Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 GISRRJ | Volume 5 | Issue 2 | ISSN : 2582-0095

दिनकर की कविता : लोकप्रियता और उत्कृष्टता का अद्भुत समन्वय

डॉ. राम उदय कुमार
असोसिएट प्रोफ़ेसर, शिवदेनी साव महाविद्यालय
कलेर, अरवल, बिहार

Article Info

Volume 5, Issue 2

Page Number : 143-152

Publication Issue :

March-April-2022

Article History

Accepted : 02 March 2022

Published : 20 March 2022

शोधसार : छायावाद सर्वाधिक सशक्त काव्यान्दोलन रहा। पर ऐसा कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि दिनकर जैसे कवियों की भाषा छायावादी काव्य भाषा से अधिक लोकग्राह्य थी। उनकी लोकग्राह्य भाषा और अर्थव्यन्जना काव्य के ये सबल पक्ष उन्हें आज भी प्रासंगिक बनाते हैं। उनकी कविता को पढ़ते हुए किसानों की जिस दुर्व्यवस्था के चित्र उभरते हैं, वे बरबस प्रेमचंद के कथा साहित्य की दुनिया की याद दिला देते हैं। इस योद्धा कवि ने कोमल और कठोर दोनों भावों की साधना की। दिनकर जी के पास राष्ट्र और भारतीयता की एक आधुनिक कल्पना थी और उनकी राष्ट्रीयता में पर्याप्त बौद्धिकता के तत्त्व थे। यह शोध पत्र दिनकर जी की इन्हीं काव्यगत विशिष्टताओं को रेखांकित करता है।

बीजशब्द : दिनकर, कविता, छायावाद, ओज, करुणा, बापू, उर्वशी

दिनकर की लोकप्रियता मैंने बचपन से महसूस की है। कहना न होगा कि तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त और दिनकर ये तीन अन्त्याक्षरी के समय हम सब के साथ होते थे। हमारे चाचा को इनकी कवितायें विपुल मात्रा में कंठस्थ थीं। इनके बल पर वे हमेशा जीतते। आम तौर पर अन्त्याक्षरी पूरी ही न होती; मानस, जयद्रथ वध या रश्मिरथी से पंक्ति दर पंक्ति चाचा गाते और वह प्रसंग कथा में खो जाता। कथा चलती जाती.. रामकथा और महाभारत से हम ऐसे ही परिचित हुए, इन कवियों से भी। तुलसी पुराने कवि हैं। नए कवियों की बात करें तो गुप्त जी, दिनकर और अन्य उत्तर-छायावादी कवि हिंदी भाषा को जन-जन तक पहुँचाने में कामयाब हुए। खड़ी बोली गद्य को जिस तरह देवकीनंदन खत्री और प्रेमचंद ने आम आदमी तक पहुँचाया, पद्य को इन कवियों ने। आजादी के संघर्ष में हिंदी गद्य और पद्य की भूमिका को जैसे

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

इन रचनाकारों ने धार दी। इनकी भाषा में इनकी भाषा में लोकग्राह्यता कहीं अधिक है।

वैसे उस दौर में छायावाद सर्वाधिक सशक्त काव्यान्दोलन रहा। पर ऐसा कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि दिनकर जैसे कवियों की भाषा छायावादी काव्य भाषा से अधिक लोकग्राह्य थी। कविता भी उतनी ही ऊँची थी ऐसा नहीं कहा जा सकता। हाँ, उस लोकग्राह्यता के सन्दर्भ में एक हद तक निराला की भाषा को रखा जा सकता है। मुक्तछंद के बावजूद भाषा में जो प्रवाहमयता, अतीत की स्मृतियाँ हैं, उसने निराला को भी दिनकर की तरह मंच पर लोकप्रियता दी थी। पर निराला की भाषा में जो अर्थ की बहुस्तरीयता है, समय के साथ अर्थ जज्ब करने का जो मूलगामी गुणधर्म है, उसके कारण वे दिनकर से बहुत भिन्न हैं। निराला की चर्चा करने का एक कारण यह भी है कि वे दिनकर को पसंद नहीं करते थे। जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखे पत्रों में यह बात आती है।[1] कारण, दिनकर की लोकप्रियता ही रही होगी। दोनों पौरुष और ओज के कवि हैं। पर निराला की उदात्तता, विश्वस्तरीयता के आगे दिनकर पिछड़ जाते हैं। वैसे दिनकर की कई कवितायें और काव्य पंक्तियाँ ऐसी हैं जो समय के साथ अपना अस्तित्व बनाये रखती हैं। अर्थ के स्तर भी। उनकी लोकग्राह्य भाषा और अर्थव्यन्जना काव्य के ये सबल पक्ष उन्हें आज भी प्रासंगिक बनाते हैं। इन पंक्तियों के जब अर्थ खुलते हैं तो जीवन के यथार्थ जगमगा उठते हैं।

उनकी बड़ी प्रसिद्ध कविता है – 'हाहाकार', यह हुंकार [1938] में संकलित है। यह संग्रह उनकी क्रांतिचेतना का वाहक है। एक बहुउद्धृत पंक्ति है –

हटो व्योम के मेघ पंथ से ,स्वर्ग लूटने हम आते हैं,
दूध ! दूध ! ओ वत्स ! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं।[2]

इस कविता को पढ़ते हुए किसानों की जिस दुर्व्यवस्था के चित्र उभरते हैं, वे बरबस प्रेमचंद के कथा साहित्य की दुनिया की याद दिला देते हैं। दिनकर के ये चित्र इसलिए प्रामाणिक बन सके हैं, क्योंकि वे स्वयं एक निम्न वित्त किसान परिवार से थे। हालत ऐसी कि घर के अकेले भाई थे जिन्हें किसी तरह पढ़ाया जा रहा था। पारिवारिक जिम्मेदारियों से आजीवन जूझते रहे और जूझते हुए ही चले गए। अस्तु!

इन पंक्तियों में 'व्योम के मेघ' और 'स्वर्ग लूटना' विशिष्ट प्रयोग हैं। ऐसे प्रयोगों को काव्य शास्त्रीय भाषा में लाक्षणिक प्रयोग कहते हैं। ऐसे प्रयोग अपने आप में अर्थ विस्तार और समय के साथ अपनी प्रासंगिकता संजोते जाते हैं। मेघ सूर्य को छिपा लेते

हैं जिसे सबके लिए सुलभ होना चाहिए। यह प्रकाश सम्पन्नता या संपत्ति का प्रकाश है यानि स्वर्ग; जहाँ सब सुविधाएँ सुलभ हैं। इस संपत्ति और सुविधाओं को सामान्य जन के लिए जैसे अवरुद्ध कर दिया गया है। सत्ताधारी आततई प्रभुवर्ग अपने दलबल के साथ इनपर काबिज है। स्वर्ग इनके हाथ में है जिसे छीनने की जरूरत है। यह कविता लुटेरी ब्रिटिश सत्ता को संबोधित है। यह जीवित कविता है। समकाल को व्यंजित करती ऐसी कई पंक्तियाँ दिनकर के यहाँ हैं :-३

बोलें कुछ मत क्षुधित , रोटियाँ स्वान खींच खाएँ यदि कर से
यही शांति ,जब वे आयें ,निकल जाएँ चुपके निज घर से।[3]

भूखे लोग कुछ न बोलें ,भले कुत्ते उनकी रोटी छीन लें। यही शांति चाहती है सत्ता कि जब सत्ता और उसके कारिंदे आवें तो लोग अपना घर छोड़कर भी निकल जाएँ। लोग एकदम निरीह, दुर्बल हो जाएँ, कोई प्रतिरोध नहीं। कुत्तों का रोटी तक छीन लेना और घर भी छुड़वा देना। इन कुत्तों के भौंकने से निरीह और दुर्बल लोग ही डरते हैं। घर अंतिम आश्रय है। घोर दुखों से अपनेपन के परिवेश में सांत्वना देने वाला। यह केवल भूगोल नहीं, यहाँ परिजनों का अपनापा है जिसमे व्यक्ति अपने कष्टों को भूलता भी है, वह शक्ति है कि विपत्ति से लड़े। शासन, सत्ता और उसके कुत्तों का यह आतंक कि घर भी छुड़ा दें। विरोध को पूरी तरह कुचल देने का उपक्रम। अभी जो बुलडोजर चल रहें है, उनकी याद आना यहाँ स्वाभाविक है। अंग्रेजी राज में गांव के गांव विस्थापित हो जाते थे। आज भी जंगलों में आदिवासी विस्थापन का दंश झेल रहे हैं। महंगाई और अर्थ के दबाव के बीच जो संत्रास आम आदमी झेल रहा है ,उसमें घर की महिमा भी घट रही है।

ऐसी परिस्थिति में 'दिगंबरी' कविता की इन क्रांतिधर्मी पंक्तियों को देखना लाजिमी है। जिसमे क्रांतिकारी आह्वान है :

तिमिर के भाल पर चढ़कर विभा के बान वाले
खड़े हैं मुन्तजिर कब से नए अभियान वाले।
प्रतीक्षा है, सुनें कब व्यालिनी फुंकार तेरा
विदरित कब करेगा व्योम को हुंकार तेरा।[4]

इस बंद में विनाश या ध्वंस की कामना से कोई जैसे झीम रहा है। कराल काली के निक्षेप से धरती से आकाश तक चले ध्वन्सनृत्य की कल्पना है ,जिस ध्वंस के बाद नवनिर्माण होगा। 'नए अभियानवाले' उस कल्पना में ही हल्के नशे में झीम रहे हैं, मानों तैयार बैठे हैं कि उन्हें कब इस ध्वंस में शामिल होने का अवसर मिले। इस छंद में

एक अद्भुत झीमने की लय है। एक भूली बिसरी लय जो मन की उमंग को सामने ला दे ,वह उमंग जिसमें व्यक्ति ध्वंस और उसके बाद के नवनिर्माण की आहट में मगन मन तैयार बैठा है। उपनिवेशवादी दौर में ध्वंस की कामना - नवनिर्माण के लिए मध्य वर्गीय आकांक्षा थी। आज स्वतंत्र भारत में भी यह आकांक्षा वाजिब है। दिनकर की उसी दौर की कविता दिल्ली याद आती है। इसमें दिल्ली को 'ब्रिटेन की दासी', 'परकीया' और 'कृषक मेघ' की रानी दिल्ली कहा। दिल्ली के लिए आज भी सार्थक है। बरस भर के किसान आन्दोलन के बाद भी किसानों की वाजिब मांगें पूरी न हुई। इस संग्रह में दिनकर ने अपना परिचय कुछ यूँ दिया है ;-

सुनूँ क्या सिन्धु में गर्जन तुम्हारा
स्वयं युगधर्म का हुंकार हूँ मैं।[5]

ऊपर उद्धृत पंक्तियाँ इस आत्म विश्वास की गवाह है। एक छोटे घर के 'मनुआ' का यह आत्मविश्वास जिसे पढ़ाने के लिए बड़े भाइयों ने त्याग किया। पटना कालेज से बी०ए० करने के बाद परिवार का दबाव रहा। मास्टरी, हेडमास्टरी से काम चला नहीं। अंग्रेजी सरकार के युद्ध विभाग में लग गए। पर यह समझौता उन्हें सालता रहा। जिस घर ने उन्हें लायक बनाया था और देश के प्रति कर्तव्य बोध यह द्वन्द आजीवन चला। अंततः इस द्वन्द को झेलते हुए ही दुनिया से 66 साल की सामान्य आयु में चले गए। एक योद्धा का जीवन जिया – एक अपराजित योद्धा।

इस योद्धा कवि ने कोमल और कठोर दोनों भावों की साधना की। उपरिवर्णित कठोर भावों में जनपक्षधरता की जो श्रोतस्विनी अन्तः सलिला की तरह प्रवाहित है, वह कोमल भावों में भी शब्दान्वित हुई। इस कठोर और उदात्त शब्दावली के साथ सुकोमल भाव भी कोमलकांत पदावली में झंकृत हुए हैं। 'कुरुक्षेत्र' का छठा सर्ग इस दृष्टि से दर्शनीय है। वैसे प्रेम-प्यार की बातें रसवंती, उर्वशी आदि में भी है। उर्वशी की बात अंत में। तो 'कुरुक्षेत्र' के युद्ध विमर्श के बीच छठा सर्ग का अपना उपमान आप है। उद्दाम आवेगक्रांति के उद्घोष में होता है तो भावों के सजल प्रवाह में भी –

चाहिए उनको न केवल ज्ञान
देवता है मांगते कुछ स्नेह , कुछ बलिदान
चांदनी की रागिनी कुछ भो र की मुस्कान
नींद में भूली हुई बहती नदी का गान
रंग में घुलती हुई खिलती कली का राज[6]

लगता नहीं कि ये पंक्तियाँ ओज और पौरुष के कवि दिनकर की हैं। प्रेम और सौन्दर्य पर दिनकर ने लिखा है, पर इन पंक्तियों में जो नाजुकी है, वह कैशोर्य भावापन्न कवि पंतजी के कोमल भावसौंदर्य से होड़ लेती है। मन में चांदनी के संगीत, भोर की मुस्कान, शांत बहती नदी का मौन पर मुखर गान जो तट पर बैठे या नौकाविहार करते मन को सहज ही मिल जाये और खिलती कली में रंगों के घुलने – इन सबसे पाठक भाव सौन्दर्य के एक सहज और शांत-स्निग्ध लोक में पहुँचता है। एक भरा पूरा बिम्ब बनता है सहृदय चित्त में जिसमें डूबकर वह प्रकृति के बेहद निकट पहुँचता है। दिनकर के ये काव्यांश उन्हें अपने पूर्ववर्ती अग्रजों से मिला देते हैं। पर कुछ अंतर के साथ।

ये सारे प्रकृति चित्र गतिमय हैं। नींद में भूली हुई नदी का गान हो कि रंगों में घुलती हुई खिलती कली का राज हो। सापेक्षिक तौर पर पंतजी में वह गतिमयता नहीं है। चाहे वह –"न जाने ढुलक ओस में कौन, निमंत्रण देता मुझको मौन"[7] का व्यक्तिनिष्ठ भावसौन्दर्य हो कि हो 'पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल बन का मर्मर'[8] की प्रशांति।

पंतजी के गतिमय चित्र भी व्यक्तिनिष्ठ होने के कारण दिनकर से अलग हैं। इसलिए दिनकर अपनी इस गतिमयता में निराला के नजदीक पहुँचते हैं। प्रकृति के सहज सौन्दर्य के प्रति यह गतिमय आकर्षण इन्हें राष्ट्रीयता से जोड़ता है। नेहरूजी की भारतमाता को याद करना चाहिए। राष्ट्रीय अतीत, आजादी का संघर्ष और स्वातंत्रयोत्तर भारत में दिनकर की कविता राष्ट्रीय भावना से सजग और सच्चे रूप में जुड़ी रही। 'बापू' जैसी काव्ययुक्तिका भी इसका प्रमाण है।

'बापू' दिनकर की महत्वपूर्ण रचना है। वे बापू की अहिंसा से पूरी तरह सहमत न थे। पर इस काव्यपुस्तिका में उन्होंने जिस तरह से 'बापू' को याद किया है, उनकी हत्या पर जो प्रतिक्रिया दी है वह वह राष्ट्रीय भावना के मेल में है। ये पंक्तियाँ देखें :-

यह रूह देश की चली अरे
मां की आँखों का नूर चला
दौड़ो, दौड़ो तज हमें
हमारा बापू हमसे दूर चला।
रोको, रोको नगराज! पंथ ,

भारतमाता चिल्लाती है,

है जुल्म ! देश को छोड़ देश की

किस्मत भागी जाती है।[9]

जो अघट घट गया, उसे रोक लेने की कैसी बेचैनी है! गाँधी थे, जिनकी मौत पर छोटे बड़े सब रोये थे। 'मैला आंचल' में गाँधी की तेरहवीं पर बारहों बरन के लोग जुटे और उनका भोज हुआ। ऐसा किसी नेता के मरने पर न हुआ।

चालीस कोटि के पिता चले

चालीस कोटि के प्राण चले

चालीस कोटि हतभागों के

आशा, भुजबल, अभिमान चले।[10]

इन चालीस कोटि में अंग्रेजों के गुलाम वे सांप्रदायिक भी थे जिनने बापू की हत्या की थी। उन नृशंस ,घृणित हत्यारों के लिए दिनकर ने लिखा :-

लिखता हूँ कुम्भीपाक नरक के

पीबकुंड में कलम बोर,

बापू का हत्यारा पापी

था कोई हिन्दू ही कठोर।

कायर, नृशंस, कुत्सित,पामर,

दनुजों में भी अति घृणित दनुज

मानव न जिसे पहचान सके,

ऐसा जघन्य विकराल मनुज[11]

दिनकर ने जिन शब्दों में उस अंग्रेजों के दलाल कुनबे के नरपिशाच को याद किया है ,वह स्वाभाविक है। गाँधी जैसे व्यक्ति, जिन्हें उनके विरोधी सुभाष बाबू ने भी राष्ट्रपिता कहा, जिनका दुनिया भर में कोई मुकाबला न था, अहिंसा का पुजारी, मानवीय गुणों पर भरोसा करने वाला हजारों साल बाद पैदा होता है। हिंसा के रास्ते क्रांतियाँ हुई। उनका जो हश्र हुआ, हमने देखा। गाँधी जी ने लाखों की जान बचाते हुए देश को आजादी दिलाई। आज उनका भी असर नहीं रहा। सांप्रदायिक लोग सत्ता में हैं जो गाँधी-नेहरू के खिलाफ थे और हैं। पर लाखों लोगों की जान बच गयी। चंद्रशेखर आजाद और भगत सिंह भी गाँधी का सम्मान करते थे। वे लोग हिंसक नहीं थे, हिंसा युवा जोश और बहरी सरकार को सुनाने की बेताबी थी। अस्तु।

अब दिनकर के उर्वशी प्रकरण की और चलना चाहिए, जो उनका मजबूत पहलू नहीं है। अधिकांश उत्तरछायावादी या राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के मस्ती के गायक कवि – साहित्यिक सत्ता के नजदीक थे। बेशक ये अपनी क्षमता की बदौलत थे और सत्ता के विरोध का माद्दा रखते थे। फिर भी काजर की कोठरी तो है –

काजर की कोठरी में केतो ही सयानो जाय
काजर की कारीख वाको लागिहै तो लागिहै

सत्ता का दूषण व्यक्ति को अपनी जड़ों से दूर करता है। सुविधाएँ जड़ वैयक्तिकता की पोषक होती हैं। ऐसे जड़ शरीरधर्म प्रबलतर होता है। दिनकर के इस पक्ष का उत्पाद है उर्वशी।

डॉ०नंदकिशोर नवल ने लिखा है – दिनकर जी के पास राष्ट्र और भारतीयता की एक आधुनिक कल्पना थी और उनकी राष्ट्रीयता में पर्याप्त बौद्धिकता के तत्त्व थे। उनके बारे में एक विद्वान् का यह कहना सही है की 'उनके विचारों में संगीत है'। बेशक दिनकर में पर्याप्त बौद्धिकता है और 'विचारों में संगीत भी' जैसा कि पीछे के विवेचन से स्पष्ट है। पर यह बौद्धिकता और संगीत स्वातंत्रयोत्तर भारत में सत्ता से जुड़ने के बाद जड़ वैयक्तिकता से बोझिल हो उठते हैं। यह संगीत छायावाद में भी था, बौद्धिकता जिसे पन्त जी में देखा जा सकता है। उनकी बौद्धिकता अध्यात्म में पर्यवसित हो गयी। यह यों ही नहीं है कि छायानुरागी कवि पन्त से दिनकर का बड़ा लगाव था। उन्होंने अपनी उर्वशी पन्त जी को ही समर्पित की है –'अप्सरालोक के कवि पन्त के योग्य'। पंतजी का अध्यात्म उर्वशी में कामाध्यात्म हो रहा है जैसा कि कतिपय लोगों ने कहा है।

उर्वशी में दिनकर जी की जड़वैयक्तिकता 'काम' के सामंती अवबोध से जुड़ जाती है 'कामायनी' और 'उर्वशी' के सौन्दर्य चित्र से तुलना करें तो पता चलता है – कहाँ वह 'नील परिधान बीच सुकुमार, खिल रहा मृदुल अधखुला अंग' का गतिशील मोहक सौन्दर्यचित्र और कहाँ, और 'वक्ष के कुसुम कुञ्ज; सुरभित विश्राम -भवन ये, जहाँ मृत्यु के पथिक ठहर कर श्रान्ति दूर करते हैं' का रीतिकालीन ठहरा हुआ चित्र। इसलिए मुक्तिबोध ने 'उर्वशी' में 'रति कक्ष के आडम्बरपूर्ण कामात्मक संलाप का प्रसारण-विस्तारण' देखा और स्पष्ट किया कि वे कामात्मक मनोरति में डूबना उतराना चाहते हैं, साथ ही इस गतिविधि को सांस्कृतिक -आध्यात्मिक श्रेष्ठत्व प्रदान कर, उस श्रेष्ठत्व का प्रतिपादन करना चाहते हैं।[12]

कामायनी और उर्वशी के अंत की तुलना से भी यह समझ पाना संभव है। उर्वशी के चले जाने पर पुरुरवा राज्य छोड़कर चल देते हैं। वे आयु और औशीनरी से भी मिलने की जरुरत नहीं समझते। उनमें उर्वशी के चले जाने का दुःख है, क्षोभ है और क्रोध भी। वे कामपीड़ा से विकल हैं। दिनकर ने भूमिका में लिखा है –'इंन्द्रियों के मार्ग से अतीन्द्रिय धरातल का स्पर्श, यही प्रेम की आध्यात्मिक व्याख्या है, वह पुरुषार्थ के कामपक्ष का माहात्म्य बताता है।'[13] यह काम या प्रेम समाज -निरपेक्ष भोगवादी सामंती मन की उपज हो सकता है। इधर कामायनी को देखें तो मानव को सबकुछ सौंपकर श्रद्धा के साथ मनु का जाना सामाजिक चिंता का आग्रही है। इसमें परम्परागत सन्यास का त्यागपत्र है।

दिनकर की उर्वशी में जो पलायन की बात आई है, वह स्वातंत्रयोत्तर भारत के मध्यवर्ग की खास मनोभूमि है। अपनी जड़ों से कटता अवसर और सुविधा के पीछे भागते मध्यवर्ग में यह पलायन सामान्य बात हो चली थी। सामाजिक जटिलताओं से वह क्षुब्ध होता है, वितृष्णा से भर उठता है और अपनी निजी दुनिया में खोता चला जाता है। 'रागदरबारी' का रंगनाथ गाँव से भाग खड़ा होता है। 'अलग अलग वैतरणी' का विपिन भी गाँव छोड़ देता है। अस्तु!

मध्यवर्ग का अवसर सुविधा के पीछे भागना और समाज -देश की समस्याओं से मुँह मोड़ना स्वातंत्रयोत्तर भारत की एक दुखद परिघटना है। पर यह भी सही है कि रचनाकार एक संवेदनशील प्राणी है और कई बार वह अपनी जड़ों की ओर लौटता भी है। दिनकर के रचनाकाल का यह दौर भी बीतता है। 'हारे को हरिनाम' के बावजूद जनपक्षधरता जोर मारती है। पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनके रचनाव्यक्तित्व के इस पक्ष को बड़ी खूबी से रखा है – "दिनकर की उमंग व मस्ती में सामाजिक मंगलाकांक्षा का प्राधान्य है। ...उनका मन व्यक्त रूप में मस्ती और मौज का उपासक है, शहर की चिंता से दुबले होने वालों से दूर रहना चाहता है। किन्तु उसके भीतर अव्यक्त और अलक्षित रूप से सामाजिक चेतना का वेग है। वह समाज की चिंता छोड़ नहीं पाता।"[14]

यह अंतर्द्वंद दिनकर में है। विभिन्न सामाजिक राजनैतिक समस्याओं के सापेक्ष एक गहरी चिंता उनकी दिल्ली श्रृंखला की कविताओं में है। स्वातंत्रयोत्तर भारत की स्थिति पर वे लिखते हैं :-

"कुछ लोग उठें और पाप से भागें। नहीं तो सब नष्ट होने वाला है। समय आ गया है की हम जागें। नहीं तो हालत ठीक नहीं रहेगी। रहम से ज़माने का दिल बिलकुल खाली है। लगता है, दुनिया राख बनने वाली है।"[15]

ऐसी कविताओं को पढ़कर देश दुनिया के प्रति एक बेबसी से भरी चिंता सामने आती है। कहना इसीलिए मुश्किल है कि दिनकर केवल मौजमस्ती के रचनाकार हैं और शहर की चिंता में दुबले होने की संवेदनशीलता का उनमें अभाव है। एक ईमानदार चिंता जिसमें अक्षमता का परिताप घुला है। अंतिम दौर की एक रचना देखें :-

लोग समझते रहे कि। मैं देश का दर्द गाता हूँ।
मगर दर्द मैंने। अपना ही गाया था।
लेकिन देखो , अब मेरा। कितना बुरा हाल है ?
लगता है , मैं कविता नहीं लिखता ,
सरापा दर्द हुआ जाता हूँ।
दीवार उठाने में देर हो तो
कोई चादर ही फेंको।
प्रभो , भरी सभा में मैं। बेपर्द हुआ जाता हूँ।

यह उनका निजी दुःख भी हो सकता है। पर इस दुःख में देश का दुःख भी घुला है।अपने समय के एक प्रसिद्ध कवि जिनकी कवितायेँ आज भी हमें अच्छी लगती हैं ,की यह चिंता आज के परिवेश में भी एक गंभीर चिंता को समेटे है। ये अपनी जड़ों की पुकार से विचलित होने का प्रमाण है और हैं मध्यवर्गीय मन के संघर्ष की साक्षी।

संदर्भ :

---

[1] निराला रचनावली ,खंड 8 ,निराला के शास्त्री जी को पत्र, संपा. -नंदकिशोर नवल ,राजकमल प्र० दिल्ली

[2] रामधारी सिंह दिनकर, हुंकार, लोकभारती, इलाहाबाद, २००३, पृष्ठ 39

[3] वही, पृष्ठ 37

[4] वही, पृष्ठ 40

[5] वही, पृष्ठ 102

[6] वही, पृष्ठ 102

[7] पंतजी की प्रसिद्ध कवितायें 'मौन निमंत्रण' एवं 'एक तारा' से उदधृत

[8] पंतजी की प्रसिद्ध कवितायें 'मौन निमंत्रण' एवं 'एक तारा' से उदधृत

[9] रामधारी सिंह दिनकर, बापू , लोकभारती, इलाहाबाद ,1999 ,पृष्ठ 30

[10] वही ,पृष्ठ 42

[11] ज्योत्स्ना ,जून 2018 ,पृष्ठ 26 ,जहानाबाद

[12] उदधृत ,कविता के नए प्रतिमान ,नामवर सिंह ;पृष्ठ 68 ,राजकमल, दिल्ली

[13] दिनकर, भूमिका, उर्वशी

[14] हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास,

[15] दिनकर, रश्मिलोक, पृ. 496